E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(2): 196-199
Received: 18-08-2019
Accepted: 24-09-2019

शशि प्रभा
पूर्व–शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
शशि प्रभा
पूर्व–शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

प्रेमचंद के उपन्यास में बाल–चरित्र : मानवीय संवेदना का उत्कर्ष

शशि प्रभा

सारांश
कथा–सम्राट प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जिस प्रकार के बाल–चरित्र की कल्पना की है, वह मानवीय संवेदना से परिपूर्ण हैं इनके बाल–चरित्र कहीं भी दब्बू, कमजोर, कायर या हतदर्प नहीं दिखाई देते हैं। अपने आसपास तमाम सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं से टकराते हुए ये बाल–चरित्र स्वयं अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते नजर आते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में उपस्थित बाल–चरित्र समाज की संवेदना को जागृत करने में अत्यंत सफल है।

प्रस्तावना
प्रेमचन्द ने बाल चरित्रों को लेकर न केवल कहानियाँ लिखी हैं, बल्कि अपने उपन्यासों में भी उन्होंने विविध बालचरित्रों का सृजन किया है। उनके बाल चरित्रों की विशेषता है कि वे टाइप्ड नहीं हैं। एक ही उपन्यास में अलग–अलग बाल पात्रों का स्वरूप भिन्न–भिन्न हैं और वे परिस्थितियों के अनुसार विकसित होते हैं। सेवासदन की सुमन और उसकी छोटी बहन शांता के चरित्र में आकाश–पाताल का अन्तर है। सुमन जहाँ सामान्य खाती–खेलती लड़की से संघर्षशील नारी में परिवर्तित हो जाती है, वहीं शांता एक यथास्थितिवादी, जिंदगी से समझौता करने वाली नारी है, जबकि सदन एक ढुलमुल चरित्र का किशोर है।
सुमन सामान्य बच्ची है। दहेज के अभाव में वह अनमेल विवाह का शिकार होती है। उसके प्रारम्भिक जीवन का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं– ''बड़ी लड़की सुमन सुंदर, चंचल और अभिमानिन थी। छोटी लड़की शांता भोली, गम्भीर, सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियाँ आतीं तो सुमन मुँह फुला लेती थी। शांता को जो कुछ मिल जाता उसी में प्रसन्न रहती।'' [1]
ऐसी सुंदर, चंचल और स्वाभिमानी लड़की का ब्याह दहेज के अभाव में दोयम दर्जे के लड़के से कर दिया जाता है। अच्छा खाने–पहनने और नाजों में पली–बढ़ी लड़की का एक तो अनमेल विवाह हुआ। ऊपर से वह अत्यन्त सुन्दर थी और पति गजाधर अति सामान्य रंगरूप का, महादरिद्र और इसी के साथ कृपण भी था। ''सुमन जब ससुराल आयी तो यहाँ की अवस्था उससे भी बुरी पायी, जिसकी उसने कल्पना की थी। मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थी। बाहर से नालियों की दुर्गन्ध आती रहती थी। धूप और प्रकाश का गुजर नहीं।'' [2]
ऐसे वातावरण में भी सुमन लगभग खुद को ढ़ाल चुकी थी। मगर उसके पति की दिन व दिन आर्थिक स्थिति पहले से बिगड़ती जा रही थी, ऊपर से हीन भावना के कारण सुमन को वह संदिग्ध नजर से भी देखने लगा था। उसका लोगों से मिलना–जुलना और बातें करना तक उसके पति को शंका में डाल देता था। ऐसे में वह जब सामने रहनेवाली वेश्या भोलीबाई के यहाँ गयी अथवा अपनी सहेली सुभद्रा के यहाँ होली में आयोजित भोली बाई का कार्यक्रम देखने गयी तो उसके पति को अब पूरी तरह विश्वास हो गया कि यह अब उसके वश में नहीं है। उसने सुमन को अपमानित करने, लांछन लगाने और अविश्वास करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी। सुमन द्वारा प्रतिकार करने पर वह और भी उग्र हो गया। ऐसे में सुमन थोड़ी दबी भी। चाहा कि स्थिति सामान्य हो जाये। मगर पति ने जब घर से निकल जाने का फरमान जारी कर दिया तो वह सह नहीं सकी। बोली– ''हाँ, ये कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वहाँ पेट पाल लूँगी।'' [3]
यहाँ से सुमन की जिंदगी में एक नाटकीय बदलाव आता है। घर छोड़कर आश्रय के लिए अपनी सहेली सुभद्रा के यहाँ जाना, सामाजिक अपवाद से घबराकर वहाँ सुभद्रा के वकील पति द्वारा ठौर नहीं दिया जाना और तब हार कर भोली बाई वेश्या की शरण में जाने तक का उसका बाह्य और अन्तर्संघर्ष बेहद संवेदनशील है। यही संघर्ष उसके स्व की तलाश भी है और स्वाभिमान की रक्षा भी। सुमन आखिर भोली के मार्ग पर ही क्यों चली गयी? इसलिए कि बहुत सोचने–समझने के बाद वह

''अंत में इस परिणाम पर पहुँची थी कि भोली स्वाधीन है, मेरे पैरों में बंड़ियाँ हैं।'' [4]

इसी जीवन में उसे पहली बार प्रेम का साक्षात्कार हुआ। सदन नामक एक लड़के पर वह आसक्त हुई मगर यह आसक्ति अपने परिणाम तक नहीं पहुँच पाती थी, क्योंकि सुमन को यह पता चल चुका था कि सदन सुभद्रा के पति वकील साहब का भतीजा है। हालांकि सदन ने अपना असली नाम पता छुपा लिया था, मगर उसका चेहरा वकील साहब से मिलता था। सुभद्रा के साथ सुमन के जैसे सम्बन्ध थे उस लिहाज से वह सदन के साथ अपने प्रेम–सम्बन्ध को अनुचित समझती थी। फिर भी एक सीमा के अन्दर ही सही वह उसके प्रेम जाल में फंसी हुई थी और यह जानते हुए भी कि इसका परिणाम सुखद नहीं होगा, वह सदन को गंवाना नहीं चाहती थी।

इन तमाम बातों के बावजूद सुमन जल्द ही अपने इस वेश्याजीवन के ऊब जाती है। उसे लगता है कि आजादी की लालसा में वह गुलामी की पहले से बड़ी काल कोठरी में कैद हो गयी है। ''सुमन को यद्यपि यहाँ भोग–विलास के सभी सामान प्राप्त थे, लेकिन बहुधा उसे ऐसे मनुष्यों की आव–भगत करनी पड़ती थी, जिनकी सूरत से उस घृणा होती थी, जिनकी बातें सुनकर उसका जी मिचलाने लगता था। अभी उसके मन में उत्तम भावों का सर्वथा लोप नहीं हुआ था। वह उस अधोगति को नहीं पहुँची थी, जहाँ दुर्व्यसन हृदय के समस्त भावों को नष्ट कर देता है।'' [5]

अब वह एक समाजसेवी के उद्यमों से इस नरक से छुटकारा पाती है। यहाँ से निकलकर वह एक विधवा आश्रम में जाती है। इस बीच उसकी माँ का देहांत हो जाता है। उसकी छोटी बहन शांता की सदन के साथ शादी हुई और इस जानकारी से की लड़की सुमन नामक वेश्या की बहन है, बारात लड़की को छोड़कर लौट गयी। सुमन ने शांता को भी अपने पास विधवा आश्रम में बुला लिया। मगर वहाँ भी उसका गुजारा नहीं हुआ। उसका एक बार वेश्या होना यहाँ भी उसके रहने में बाधक हुआ। अब उसे जीवन से विराग हो गया। संयोग से उसकी मुलाकात सदन से हुई और उसने उसकी जमकर खबर ली। सदन के ऊपर उसकी बातों का प्रभाव पड़ा और उसने अपने माँ–बाप के विरुद्ध शांता को अपना लिया। अपना धंधा शुरूकर के घर बसा लिया। सुमन भी उन्हीं के साथ रहने लगी और उनकी गृहस्थी में हाथ बँटाने लगी। मगर वही सदन जो कभी उसके प्रेम में पागल हो रहा था अब उसे अपने घर में रखने से कतराने लगा। उसे भय था कि सुमन के पिछले जीवन के कलंक का दाग उसकी कुल–मर्यादा पर भी लग जायेगा। इस तिरस्कार से सुमन आहत ही नहीं होती, टूट जाती है।

यहाँ आकर फिर एक नाटकीय मोड़ उसके जीवन में आता है। वह जब गंगा में डूबने के लिए जाती है तो अचानक वहाँ उसका पति गजाधर, जो अब संन्यासी हो गया है– आकर उसे डूबने से बचा लेता है और एक सेवाआश्रम खोलकर उसका सारा कार्यभार सुमन को सौंपकर स्वयं जनसेवा के लिए अपने कार्यक्षेत्र में चला जाता है।

इस प्रकार एक साधारण–सी बच्ची दुर्भाग्य का शिकार होने के बाद अपने संघर्षों के बीच विकसित होती है और अन्ततः समाज सेवा का व्रत लेकर अपने ही समान अबलाओं के उत्थान में स्वयं को झोंक देती है।

कर्मभूमि उपन्यास का नायक अमरकांत एक आदर्शवादी युवक है। वह गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित है और नियमित रूप से चर्खा चलाता है। वह ''सांवले रंग का छोटा–सा, दुबला–पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गयी थी, पर अभी मसें भी न भींगी थीं। चौदह–पन्द्रह साल के किशोर–सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती–जुलती थी अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा कुछ ऐसी मनस्विता थी कि एक बार उसे देखकर भूल जाना कठिन था।'' [6]

दरअसल अमरकांत की माता का देहान्त उसके बचपन में ही हो गया था। उसके पिता समरकांत ने जब दूसरी शादी की तो अमरकांत ने बहुत कोशिश की कि विमाता के द्वारा ही वह माँ के रिक्त स्थान को भरे। मगर इसकी लाख चेष्टाओं के बावजूद विमाता ने अमरकान्त को कभी अपना बेटा नहीं माना। यहाँ तक कि वह अपनी बेटी नैना को भी अमरकान्त से दूर ही रखना चाहती। हालांकि निर्मला के मंसाराम, जियाराम और सियाराम भी मातृहीन ही थे और उन्हें भी विमाता के साथ ही जीवनयापन करना था, मगर निर्मला ने कभी भी हृदय से उन्हें सौतेला नहीं माना था– जबकि अमरकान्त विमाता के द्वारा उपेक्षा और अवहेलना का शिकार था। फिर भी उसे जितनी शिकायत विमाता से नहीं थी, उससे कहीं ज्यादा शिकायत अपने पिता से थी। ''इसे चाहे पूर्व संस्कार कह लो, पर हम तो यही कहेंगे कि अमरकांत के चरित्र का निर्माण पिता द्वेष के हाथों हुआ।'' [7]

तय है कि विमाता के तमाम दुर्व्यवहार का जिम्मेदार अमरकांत पिता को मानता था। उन्होंने ही उसके लिए एक दुश्मन खड़ा किया था। नतीजे में वह पिता का विरोधी हो गया था। पिता को जो अच्छा लगता, अमरकांत उसे बुरा कहता। अर्थात् उसका सारा आचार–विचार पिता के विपरीत हो गया था। इसीलिए पिता उसे अपने व्यवसाय में लगाना चाहते थे मगर वह व्ययसाय के झूठ–फरेब से नफरत करता था और अपना जीवन समाज सेवा में लगाना चाहता था। वह कुछ–कुछ नकारवादी अथवा मनोगतवादी हो गया था– उसके इसी स्वभाव के कारण उसकी पत्नी से भी नहीं पटती थी। पत्नी एक बड़े और धनाढ्य परिवार की अकेली संतान होने के कारण भोग–विलास में ज्यादा रुचि लेती थी, जबकि अमरकांत का भोग–विलास से छत्तीस का आँकड़ा था।

पिता और पत्नी द्वारा उसे बार–बार कर्तव्यबोध कराया जाता है कि अब उसे कारोबार में हाथ बंटाकर घर–गृहस्थी संभाल लेनी चाहिए द्य मगर उसे ये बातें नागवार गुजरती हैं। इन्हीं सब विपरीत परिस्थितियों के कारण घर से कभी उसकी आत्मीयता नहीं बन सकी। बस एक नैना थी, जिसके कारण वह घर से जुड़ाव महसूस करता था। नैना अपने भाई से अतीव प्रेम रखती थी।

अमरकान्त को समय पर कभी स्कूल की फीस नहीं मिल पाती थी। रात–दिन पिता उसकी पढ़ाई से चिढ़े रहते थे। इसलिए खिन्नतावश भले ही वह पढ़ाई में कमजोर हो, मगर उसने चूँकि पढ़ने की ठान ली थी, इसलिए जम कर परिश्रम करने लगा और परिणाम यह हुआ कि मैट्रिक की परीक्षा में वह प्रान्त भर में प्रथम आया।

वह अपनी पढ़ाई और जनसेवा के कार्यों में समय व्यतीत करता था तो पिता ने स्पष्ट कह दिया कि अब उनसे घर भर का भार नहीं ठाया जायेगा। इस पर अमर घर छोड़कर पत्नी सहित किराये का मकान लेकर रहने लगा। खर्चे के लिए खादी के कपड़े पीठ पर लादकर गली–गली बेचने लगा।

एक बार वह जी जांतकर अपने पिता की दुकान पर बैठने लगा था। मगर उसे जब ज्ञात हुआ कि उसके पिता अपनी दुकान में चोरी के गहने औने–पौने भाव में खरीदा–बेचा करते हैं तो यह भी उसे रास नहीं आया। माँ की ममता और पत्नी प्रेम से वंचित अमरकान्त एक गरीब पठानिन की लड़की सकीना से प्रेम करने लगता है। वह अब पूरी तरह से जनता के कार्यों में लग जाता है। वह चाहे फिरंगी द्वारा बलात्कार की शिकार मुन्नी का केस लड़ने का मामला हो, मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश का मामला हो अथवा नगरपालिका की जमीन पर हरिजनों के लिए आवास बनाने का मामला–हर आन्दोलन में वह बढ़–चढ़कर भाग लेता है।

इन आन्दोलनों के बीच से गुजरते हुए वह राजनीतिक रूप से

परिपक्व होता है और इस सच्चाई को जानने लगता है कि भारत की आजादी तभी संभव है, जब गाँव आजाद हो। किसानों की समस्याओं के समाधान के बिना किसी भी समस्या का समाधान स्थायी निदान नहीं हो सकता। इसलिए वह गाँवों की ओर प्रस्थान करता है। एक दलित बस्ती को अपना कार्यक्षेत्र बनाता है। उन्हें संगठित करता है। शिक्षित करता है और अन्याय के खिलाफ लड़ने योग्य बनाता है। दलित किसानों द्वारा मालगुजारी की वृद्धि के खिलाफ व्यापक आन्दोलन छिड़ता है। कई लोग मारे जाते हैं, बहुत से गिरफ्तार होकर जेल जाते हैं। अमरकान्त को भी जेल जाना पड़ता है। बाद में उसके घर के सारे सदस्य धीरे–धीरे आन्दोलन में शामिल होते हैं। सभी जेल जाते हैं और अन्ततः जनदबाव में आकर सरकार सब लोगों को रिहा करती है। अमरकान्त की सौतेली बहन नैना की अपनी माँ भी उसकी बाल्यावस्था में ही मर जाती है। उसकी सूरत अमरकांत से बहुत हद तक मिलती थी और अमरकांत को वह सगे भाई से भी ज्यादा मानती थी। अमरकांत जब पिता की बात से आहत होकर घर छोड़ने पर आमादा होता है तो नैना पिता की परवाह नहीं करके अमरकांत के साथ खुद भी चली जाती है। उसका कारण यह भी है कि अब अमरकांत एक बच्चे का बाप बन गया है और वह बच्चा नैना के लिए खिलौना है। उस खिलौना को वह एक पल भी अपने से दूर होने देना नहीं चाहती थी।

नैना पढ़ी–लिखी तो नहीं हैं, मगर अमरकान्त के सान्निध्य में उसके विचारों का विकास होता है। यह विकास इतनी ऊँचाई प्राप्त करता है कि मानवीय सम्बन्धों, पति–पत्नी सम्बन्धों, प्रेम, सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखंडों और शोषण–अत्याचार के बारे में उसकी समझ काफी उन्नत हो गयी है। ''नैना को भी धर्म के पाखण्ड से चिढ़ थी। अमरकान्त उससे इस विषय पर अकसर बातें किया करता था। अछूतों पर अत्याचार देखकर उसका खून खौल उठा था।'' [8]

यही कारण है कि शांति कुमार जब हरिजनों को मंदिर में प्रवेश करवाने का आन्दोलन चलाते हैं तो वह उनके प्रति अपनी आस्था प्रकट करती है। वे जब पंडे–पुजारियों की लाठी से आहत होकर अस्पताल में भर्ती हैं तो वह उनकी देख–रेख के लिए अस्पताल जाया करती है।

नैना की शादी जिस लड़के से होती है वह न केवल धनाढ्य है बल्कि धन पशु है। उसके सामने नैना की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। क्योंकि नैना उसके दुर्व्यसनों के कारण उसके आगे समर्पण नहीं करती। नैना अपनी भाभी सुखदा से कहती है– ''जो विवाह को धर्म का बन्धन नहीं समझता है, इसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है, वह पशु है।'' [9]

शहर में जब हरिजन बस्ती बनवाने के लिए सुखदा के नेतृत्व में नगरपालिका के खिलाफ आन्दोलन चलता है तो नैना के ससुरालवाले दमन का रास्ता स्वीकार करते हैं। और नैना आन्दोलन में शरीक होती है। वह न केवल शरीक होती है, बल्कि आन्दोलन को अंजाम तक पहुँचाने में अपने प्राणों की आहुति तक देती है।

इस प्रकार कर्मभूमि के बालपात्र काफी विकसित और सामाजिक परिवर्तन की भूमिका में है। वे सहज ही पाठक के मन में संवेदना जगाते हैं और उनके मन में अपनी स्थायी छवि बनाने में सफल होते हैं।

प्रेमचन्द के सम्पूर्ण कथा साहित्य में आये बालपात्रों में गोदान के बालपात्रों का स्वरूप सबसे अलग है। इस उपन्यास में मुख्यरूप से गोबर और सोना दो ही बाल चरित्र हैं। कहने को गोबर की सबसे छोटी बहन रूपा भी है। मगर वह पूरे उपन्यास में निमित्त मात्र है। हाँ, झुनिया की भूमिका को किसी तरह से भुलाया नहीं जा सकता। वह गोबर की बिन ब्याही पत्नी है।

गोबर इस उपन्यास में एक तरह से मुख्यपात्र है। वह अपने पिता होरी से अलग है। होरी जहाँ मेहनतकश, स्वामीभक्त और धर्मभीरु इन्सान है। सामंती शोषण और महाजनी तिकड़मों को अथवा धार्मिक पाखण्डों को अपना नसीब मानकर सहन करता है। शांत व्यक्ति है। वहीं गोबर शोषण–अत्याचार के खिलाफ उबल पड़नेवाला लड़का है। उसे यह बात बहुत बुरी लगती है कि उसका पिता रायसाहब की खुशामद में लगा रहता है। वह जमींदारों और महाजनों के ढ़ोंग और पाखण्डों को समझता है। वह जानता है कि गरीबों की कमाई पर ही रायसाहब जैसे लोगों का ठाठ–बाट है। गोबर अपनी जिंदगी से पूरी तरह से असंतुष्ट है। उसे यह बात नागवार गुजरती है कि सालभर हड्डी तोड़ कर जितनी फसलें उगाओ वह जमींदारों और महाजनों के कर्ज चुकाने में भुगतान कर दो और खुद सालभर चबेने केलिए भी मुहताज रहो। ऐसी जिंदगी को वह बदलना चाहता था। उसे मालूम था कि समरथ को नहीं दोष गुसाईं। जो सामर्थ्यवान है समाज, कानून, धर्म सब उन्हीं के पक्ष में खड़ा होता है। यही कारण है कि झुनिया को घर के पास छोड़कर वह शहर पलायन कर जाता है। उसका समझना है कि शहर जाकर यदि मजूरी करके चार पैसा कमा लेगा तो फिर उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ेगा। वह मजे से झुनिया के साथ रह लेगा। कोई उसका विरोध नहीं करेगा।

गोबर दरअसल किसान से मजदूर बनने की सामाजिक विघटन का प्रतीक है। सामंती व्यवस्था में बड़ी तेजी में किसान अपनी जायदाद गँवाकर मजदूर बनने केलिए विवश हो जाते हैं। प्रेमचन्द ने इस सच्चाई को गहराई से पकड़ा था। इधर गाँव में गोबर का बाप होरी किसानी से मजदूरी करने को अभिशप्त होता है और उधर गोबर शहर में मजदूरी करता है। मगर दोनों मजदूर की मानसिकता में फर्क है। प्रेमचन्द यह भी बखूबी समझ रहे थे। गाँव का मजदूर जहाँ असंगठित और अशिक्षित होने की वजह से राजनीतिक चेतनाविहीन होता है, वहीं शहरी मजदूर राजनीतिक रूप से सचेत हो जाता है। वह शोषण की असली जड़ को पहचान लेता है। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। संघर्ष करता है।

गोबर कुछ दिन तो मिर्जासाहब की गुलामी बजाता है। फिर जल्दी ही उसकी अक्ल खुल जाती है और इसीलिए ''अब वह सीधा–साधा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने बहुत कुछ दुनिया देख ली है और संसार का रंग–ढंग भी कुछ–कुछ समझने लगा है। मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दाँत से पकड़ता है, स्वार्थ को भी नहीं छोड़ता और परिश्रम से जी नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है, लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गयी है। उसने पहले महीने में तो केवल मजूरी की और आधा पेट खाकर थोड़े से रुपये बचा लिए। फिर वह कचालू और मटर और दही बड़े के खोमचे लगाने लगा। इधर ज्यादा लाभ देखा तो नौकरी छोड़ दी। गर्मियों में शर्बत और बरफ की दूकान भी खोल दी। लेन–देन में खरा था। इसलिए उसकी साख जम गयी। जाड़े आये तो उसने शरबत की दूकान उठा दी और गर्म चाय पिलाने लगा। अब उसकी रोजाना आमदनी ढाई–तीन रुपये से कम नहीं थी। उसने अंग्रेजी फैशन के बाल कटवा लिये हैं। महीन धोती और पंपशू पहनता है। एक लाल ऊनी चादर खरीद ली और पान–सिगरेट का शौकीन हो गया है। सभाओं में आने–जाने से कुछ–कुछ राजनीतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक निन्दा का भय अब उसमें बहुत कम रह गया है। आये दिन पंचायतों ने उसे निस्संकोच बना दिया है। जिस बात के पीछे वह यहाँ घर से दूर मुँह छिपाये पड़ा हुआ है, उसी तरह की, बल्कि उससे भी कहीं निन्दापस्द बातें यहाँ नित्य हुआ करती हैं और कोई भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुँह चुराये।''[10]

इसी तरीके से ग्रामीण युवक गोबर का एक तरह से कायाकल्प होता है। मगर इस काया–कल्प के साथ–साथ उसमें शहरी दुर्गुण का भी आविर्भाव होता है। खासतौर से तब, जब वह चीनी

मिल में मजदूरी करने लगता है। वहाँ उसमें ताड़ी पीने और जुआ खेलने की आदत पड़ जाती है। दूसरे इस संक्रमण काल में उसने अंदर एक तरह की उदंडता आ जाती है, साथ ही अपने परिजन अब मूर्ख और गंवार लगने लगते हैं। वह उन्हें स्वयं से हीन समझने लगता है। यहाँ तक कि माता–पिता को भी। यही कारण है कि जब वह पहली बार होली में शहर से गाँव आता है तो एक तो सारे गाँव पर अपनी सामर्थ्य का रौब जमाता है। दूसरे तमाम मुखिया, सरपंजों की खिल्ली उड़ाता है। नतीजे में सबका कोपभाजन बनता है। हालांकि वह तो फिर शहर भाग जाता है, असल कोपभाजन बनना पड़ता है उसके बाप होरी को। मुखिया, सरपंचों, पटवारी, महाजन सब उससे बदला चुकाते हैं और उसकी जमीन–जायदाद सब कुछ नीलाम करवा लेते हैं।

चार पैसे कमा लेने के बाद गोबर को लगता है कि घर के पीछे पैसे गँवाने से उसे कुछ नहीं हासिल होने वाला। उसे अब अपने बीवी–बच्चों के बारे में सोचना और करना चाहिए। इसलिए वह होली बिताने के बाद माँ–बाप से लड़–झगड़ कर झुनियाँ और बच्चे को लेकर लखनऊ चला जाता है।

उसके बाद चीनी मिल में नौकरी करता है। हड़ताल में पुलिस की लाठी से घायल होकर बीमार होता है। झुनियाँ के प्रति आसक्ति में कमी। दरअसल दोनों के प्रेम में कमी आने के पीछे गिरती हुई आर्थिक स्थिति है। अर्थात् भूखा आदमी प्रेम भी नहीं करता। दोनों के सम्बन्ध कटु होते चले जाते हैं। बच्चे की इलाज के अभाव में मृत्यु हो जाती है। झुनियाँ दुबारे गर्भधारण करती है। फिर से माँ बनती है। आखिरकार डाक्टर मालती के यहाँ गोबर को रहने के लिए घर और नौकरी मिल जाती है। गोबर के दिन फिर जाते हैं।

इस प्रकार गोबरर एक सर्वाधिक सचेतन पात्र है। उसके प्रति सहज ही पाठकों की संवेदना जुड़ जाती है। वह संघर्षों के दौरान अपने चरित्र का विकास करता है। परिस्थितियों से कभी हार नहीं मानता। शोषण–अत्याचार के सामने कभी घुटने नहीं टेकता।

झुनियाँ की शादी कहीं शहर में हुई थी। मगर जल्द ही विधवा हो जाने के कारण नैहर में रहने के लिए मजबूर थी। यहाँ भौजाइयों भाइयों और यहाँ तक कि बाप के व्यवहार ने उसका जीवन नारकीय बना दिया था। ऊपर से जवान औरत पर जमाने भर की बुरी नजर लगी रहती थी। वह अपने लिए एक सबल सहारे की तलाश में ही थी कि अचानक उसे गोबर मिल गया। उसे अपनी ओर से काफी जाँचने–परखने बाद वह समर्पित हो गयी। सो इस हद तक कि शादी से पहले ही गर्भ धारण कर बैठी। मगर गोबर जब लोक लाज के भय से उसे अपने घर के पास छोड़कर धोखे से शहर भाग गया तो उसे अपने फैसले पर बड़ा अफसोस हुआ। अब उसके लिए डूब मरने के सिवा कोई चारा नहीं था। मगर गोबर की माँ ने जब उसे अपने घर में बिठा लिया तो उसे राहत मिली।

वह गोबर के साथ शहर नहीं जाना चाहती थी। बूढ़े सास–ससुर को छोड़कर पति के साथ जाना उसे अनुचित जान पड़ता था। मगर उसका क्या जोर था। इधर सास–ससुर और ननद की जिम्मेदारी थी तो उधर पति के प्रति कर्त्तव्य। बेचारा गोबर सालभर से चूल्हे में अपना हाथ जला रहा था। ऐसे में कोई भी औरत पति के साथ ही खड़ी होगी। मगर उसे क्या पता था कि उसके शहर आते ही गोबर मेहनत मजदूरी और पैसे कमाने की बजाय केवल भोग–विलास में लिप्त हो जायेगा। गोबर जहाँ दूकान लगाता था, वह जगह किसी और ने हथिया ली थी। इसलिए वह बेरोजगार हो गया था। मनोरंजन का कोई अन्य साधन नहीं होने के कारण वह दिल बहलाने का एकमात्र साधन झुनियाँ को समझ बैठा था। धीरे–धीरे रोटी के जब लाले पड़ने लगे तो 'भूखे भजन न होंहि गोपाला' की तरह झुनियाँ को गोबर की नोच–खसोट से घृणा होने लगी। वह उसके प्रति उदासीन रहने लगी। नतीजे में दोनों के बीच अनबन और खिंचाव की स्थिति बनने लगी। मगर जब मिल की हड़ताल में घायल होकर गोबर घर आया तो झुनियाँ सारे गिले–शिकवे भूल गयी। वह उसकी सेवा में मातृभाव से लग गयी। इतना ही नहीं घर का खर्चा चलाने के लिए घास छील कर बाजार में बेचने लगी।

इस प्रकार झुनिया एक अति व्यावहारिक चरित्र है। उसके प्रति भी पाठक के मन में भरपूर संवेदना जगती है।

स्त्री–चरित्र में गोबर की बहन सोना बहुत उन्नत चरित्र है। वह निरक्षर लड़की अपने अधिकारों के प्रति इतना सचेत है कि विवाह में दहेज का जमकर विरोध करती है और अन्ततः वर पक्ष को झुकाकर ही दम लेती है। इतना ही नहीं वह मर्यों को इस बात की बिल्कुल ही छूट नहीं देना चाहती कि वह जहाँ चाहे तहाँ मुँह मारता फिरे। उसे जब पता चलता है कि उसका पति सिलिया पर आसक्त हो गया है तो चण्डी का रूप धारण कर लेती है। हाथ में गंडासा लेकर ऐसा प्रतिकार करती है कि पति दुम दबाकर भाग खड़ा होता है। सिलिया को भी वह आड़े हाथों लेती है कि उसने उसके पति के ओछे प्रयास का मुँह तोड़ जवाब क्यों नहीं दिया। सोना दरअसल औरत की अस्मिता और इज्जत का प्रतीक बन कर उभरी है।

निष्कर्ष

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान में भी तमाम बाल चरित्रों का स्वरूप बेहद आकर्षक और अनुकरणीय है। और सबके सब संवेदना के स्तर पर पाठकों के मन को झकझोरने में सफल हुए हैं। वस्तुतः प्रेमचंद हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने, विश्वसनीय और पाठकों को आत्मीय लगने वाले पात्रों का संसार खड़ा कर दिया। यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक कथा साहित्य में कहीं पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण तंत्र को उजागर करने केलिए, कहीं किसी मुख्य पात्र के हृदय परिवर्तन को आधार बनाते हुए तो कहीं पारिवारिक माहौल को पूर्णता प्रदान करने हेतु न सिर्फ बहुविध स्वरूप वाले बालचरित्रों का सृजन किया है, बल्कि इन बालचरित्रों की संवेदना के भी विविध स्तर और धरातल हैं।

संदर्भ–संकेत

1. 'सेवासदन' प्रकाशन संस्थान, पृ.–6
2. वही, पृ.–17
3. वही, पृ.–36
4. वही, पृ.–32
5. वही, पृ.–18
6. 'कर्मभूमि', लोकभारती प्रकाशन, पृ.–10
7. 'कर्मभूमि', लोकभारती प्रकाशन, पृ.–12
8. 'कर्मभूमि', लोक भारती प्रकाशन, पृ.–143
9. 'कर्मभूमि', लोक भारती प्रकाशन, पृ.–178
10. 'गोदान', सुमित्र प्रकाशन, पृ.–171–172